Name of Scholar : Mr. Abdul Rashid Ganai
Supervisor : Dr. Krishan Kumar Kaushik
Department : Hindi
Topic : **"Sant Kavyatri Lalladed Aur Sajhobayee Ka Tulnaatmak Adhayayan"**

ABSTRACT

"संत कवयित्री ललद्यद और सहजोबाई का तुलनात्मक अध्ययन" से प्राप्त निष्कर्षों का सारांश इस प्रकार है। कश्मीर की आदि कवयित्री ललद्यद को कश्मीर में 'द्वितीय राबिया' का नाम दिया गया है। कश्मीरी आवाम में लल्लेश्वरी, लल योगेश्वरी, ललारिफा, लल, लला, ललमोज़ आदि नामों से प्रसिद्ध है। आज भी कश्मीरी लोगों में सांस्कृतिक पर्वोत्सवों का श्री गणेश ललद्यद के वाखों के भजन-गायन से किया जाता है। ललद्यद और सहजोबाई के जीवन में गुरूपद की विशेष भूमिका रही है। गुरू के एक वचन 'बहिरङ्गाद् अन्तरङ्गं स्वं प्रविशेति गुरूर्जगौ।', ने लल के अन्तःचुक्षओं को खोल दिया था। परिणामस्वरूप उसने अपने को अन्तर्मुखी साधना में लीन कर दिया और उस पद को प्राप्त किया जहाँ राग-द्वेष, स्व-पर, वर्ण, वर्ग, जाति, धर्म, भाषा और क्षेत्रीयता के लिए कोई स्थान नहीं था। मन की दूषित वृत्तियों के शमन के साथ ही सभी प्रकार के भेद-भाव स्वतः ही समाप्त हो जाते हैं। आत्मानुभव की उस अवस्था में हिन्दू और मुसलमान का भेद तिरोहित हो जाता है-'शिव छुय थलि थलि रोज़ान, मोज़ान ह्योंद तु मुसलमान त्रुक अय छुख तु पान परज़ान, सोयछय साहिबस सत्य ज़ान॥', तब सभी ओर समता और समरसता का भाव व्याप्त हो जाता है। सहजोबाई के विवाह पर संत चरणदास ने सहजोबाई की ओर उन्मुख होकर कहा था कि 'सहजो तनिक सुहाग पर, कहा गुदाए शीस। मरना है रहना नहीं जाना बिस्वे बीस ।' यह वचन सुनते ही सहजोबाई ने विवाह करने से मनाकर दिया और अपने आप को प्रभु भक्ति में लीन कर दिया। दोनों साधिकाओं में गुरू के प्रति अगाध श्रद्धा भाव और विश्वास था- 'राम तजूं पै गुरू न विसारूं, गुरू के सम हरि को न निहारूं।'

उक्त तुलनात्मक अध्ययन का निष्कर्ष है कि संत-वाणी को देश विशेष या प्रदेश विशेष की हद् में बाँधकर नहीं रखा जा सकता। कश्मीरी भाषा की कालजयी रचनाकार ललद्यद की साधना एवं जीवन संदेश और हिन्दी भाषा की साधिका कवयित्री सहजोबाई का वाणी संदेश किसी जाति विशेष या धर्म विशेष के लोगों के लिए नहीं है अपितु मनुष्य मात्र के लिए है। आज की परिस्थितियों में सांस्कृतिक और सामाजिक दृष्टि से दोनों साधिकाओं का तुलनात्मक अध्ययन विषमता और विसंगतियों के वातावरण में समता और समरसता का भाव विकसित करने में सहायक होगा। दोनों साधिकाओं के रचनाकाल में लगभग ४०० वर्षों का अन्तर है लेकिन परिस्थितियों में विशेष अन्तर नहीं था। उक्त तुलनात्मक अध्ययन को मैंने पाँच अध्यायों में विभाजित किया है।

ललद्यद और सहजोबाई की वाणी में अन्त:पीड़ा का जीवन्त चित्रण मिलता है। प्रतिपाद्य की दृष्टि से कश्मीर की कवयित्री की रचनाधर्मिता का केन्द्र स्वात्मा का अनुभव है। इनके वाखों में धर्म, दर्शन, ज्ञान, भक्ति और लोक का गहन अनुभव समाया है। दोनों कवयित्रियाँ योग साधना में पटु थी। सहनशीलता के लिए समूची कश्मीर घाटी में ललद्यद का कोई प्रतिमान नहीं है। सहजाबाई रचित 'सहजप्रकाश' इनकी एकमात्र रचना है। इनकी वाणी पर दर्शन के गूढ़ सिद्धान्तों का प्रभाव नहीं मिलता। सहजप्रकाश अपने नाम के अनुरूप सहज है लेकिन उतना ही गूढ़ गंभीर भी है। ललद्यद और सहजोबाई दोनों ने ही योग साधना के बाह्य विधि-विधानों को महत्ता नहीं दी थी। वास्तविक साधना तो 'मन' की साधना है। मन की साधना के लिए योग के महत्व को दोनों साधिकाओं ने स्वीकार किया है। योग साधना में जितनी पटु ललद्यद थी उतनी सहजोबाई नहीं । परम सत्य को शास्त्र और बुद्धि के तर्क-वितर्क से नहीं पाया जा सकता। स्वानुभूति से ही उसे अनुभूत किया जा सकता है। अपनी वाणी रचना को प्रभावशाली बनाने के लिए दोनों साधिकाओं ने युगीन मुहावरों-लोकोक्तियों का सटीक प्रयोग किया है।

काव्य रचना इनका उद्देश्य नहीं था, न वह साध्य था। इनका वर्ण्य विषय तो परम सत्य का साक्षात्कार था। दोनों साधिकाओं ने ब्रह्म से साक्षात्कार में अपने जीवनानुभवों की अनुभूति को अपने वाखों और वाणी में जिस प्रकार अभिव्यक्त किया उसमें उनका पूरा युग बोध समाया है। ललद्यद और सहजोबाई ने पोथी ज्ञान को महत्व नहीं दिया अपितु जीवन में कथनी-करनी और रहनी की एकता के साथ शील-आचरण को सर्वोपरि माना है। दोनों साधिकाओं ने अध्यात्म को जीवन और समाज से जोड़ा है। ललद्यद और सहजोबाई ने अपने आध्यात्मिक चिन्तन से भारतीय संस्कृति की अनेकता में एकता के स्वर की अनुगूंज को समृद्ध और प्रभावशाली ढंग से अभिव्यक्त किया है। अध्यात्म और समाज को जीवन से अनुस्यूत कर जिस सांस्कृतिक चेतना को विकसित किया है उसने सामाजिक मूल्यों की बुनियाद को और मजबूत किया है। १४वीं सदी को ललद्यद और १८वीं सदी की सहजोबाई ने अपनी रचनाधर्मिता द्वारा नारी को जागरूक बनाने में अहं भूमिका अदा की है। इन साधिकाओं ने विकट परिस्थितियों के सम्मुख आत्म सर्मपण नहीं किया वरन् अपने दायित्व का निर्वाह करते हुए तत्कालीन युग की नारी को भी जागरूक बनाया। मुझे उम्मीद है कि इस प्रकार के तुलनात्मक अध्ययन सांझी सांस्कृतिक विरासत के आधार को और सुदृढ़ करेंगे।